SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

जसिंता केरकेट्टा के काव्य में प्रकृति का विकास, विनाश और विरोध

क्षमा कुमारी, पी.–एचडी., हिंदी विभाग
पी. सी. विज्ञान महाविद्यालय, छपरा, सारण, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
क्षमा कुमारी, पी.–एचडी.
E-mail : kshamak155@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 21/06/2025
Revised on : 23/08/2025
Accepted on : 02/09/2025
Overall Similarity : 01% on 25/08/2025

शोध सार

इस शोधालेख के केंद्र में जसिंता की प्रकृतिपरक कविताएं हैं, उसका दोहन है, विकास के नाम पर जो उसके साथ छेड़–छाड़ की जाती है, उसका विरोध है। इस शोधालेख में जसिंता की प्रकृतिपरक रचनाओं को ही केंद्र में रखा गया है। प्रकृति जिसके आदिवासी उपासक हैं, उससे उन्हें अलग करने की जो राजनीति चल रही है, जसिंता का स्वर उसे लेकर मुखर है। आदिवासी प्रकृति के सिर्फ उपभोक्ता नहीं है, बल्कि उसके संरक्षक भी हैं, उनका मानना है कि मनुष्य प्रकृति का एक अंग मात्र है और उन्हें केवल उतनी ही प्राकृतिक संपदा लेनी चाहिए जितनी उन्हें अपना जीवन जीने के लिए आवश्यक है। नदियां, पहाड़, पक्षी और जानवर आदि सब कुछ प्रकृति का हिस्सा हैं। मनुष्य को इन अन्य प्राणियों के जीवन की भी चिंता करनी चाहिए। जल, जंगल और जमीन आदिवासियों की पहचान है, उससे उन्हें विस्थापित करने की जो चाल है, जसिंता की सृजनशीलता उसे भी अपने काव्य का विषय बनाती है, साथ ही एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में विरोध भी करती हैं। जसिंता के काव्य का फलक बहुत ही विस्तृत है और वह अपने में कई रंगों को समाहित किए हुए है। यहाँ प्रकृति के वो पेड़–पौधे, जीव–जंतु हैं जो साहित्य में त्याज्य समझे जाते थे। जसिंता की संवेदना उन सबको छूती है – कचनार और कोईनार के फूल, रुगड़ा, खुखड़ी, घुग्घू, झींगुर, जुगनू, गोंदली, महुआ आदि। आदिवासियों के लिए प्रकृति जीविका का स्रोत है। जंगल से जड़ी – बूटी इक्ट्ठी करना, बाँस से टोकरी बनाना, गिरे हुए पत्तों से पत्तल बनाना, ईंधन के लिए लकड़ी तलाशना, परन्तु उन्होंने कभी भी उसे नुकसान नहीं पहुंचाया या हरे पौधों को नहीं काटा, महुआ के चुनने की भी उन्होंने प्रतीक्षा की है। वनों की कटाई, पहाड़ों का अवैध खनन, कांक्रीट का जंगल तथा नदियों का दोहन सरकार और कंपनी की

मिलीभगत का परिणाम है। सरकार और कंपनियों ने आदिवासियों को मुख्यधारा में लाने के लिए उनका विकास करने के नाम पर उनका विस्थापन किया साथ ही प्रकृति का विपर्यय भी किया गया है।

मुख्य शब्द

प्रकृति, विपर्यय, समाहित, कंक्रीट का जंगल, नदियों का दोहन, संवेदना, आदिवासियत.

परिचय

जसिंता केरकेट्टा हिंदी आदिवासी काव्य की एक उभरती हुई कवयित्री हैं। उनका जन्म झारखंड के पश्चिमी सिंहभूम जिले के खुदपोस गांव में हुआ था। खुदपोस गांव कोईल नदी के किनारे बसा है। पेड़ों से आच्छादित ऊँचे–ऊँचे पहाड़, पहाड़ों से निकलते झरने, खेती के लिए चौरस की गई जमीन, खेती के साथ लगाए गए आम, जामुन, इमली के फलदार पेड़, मुर्गे–बतखों, खरगोश को पाले हुए छोटे–छोटे कच्ची मिट्टी के घर, उन घरों के दीवारों पर उकेरी गई सोहराई कला इस गांव की पहचान है। पहाड़ों से लकड़ी चुनकर उतरती महिलाएं, जंगल से जड़ी–बूटी इक्ट्ठे करते पुरुष, चुएं से पानी भरकर लाती महिलाएं, छोटे–छोटे दुकानों पर बतकही करते, कुल्हड़ में चाय पीते, बीड़ी पीते लोग, मादर और ढोल की आवाज पर नाचते बच्चे चूल्हे से निकलता धुआं, मिट्टी के बर्तनों में पकता भात और मर सग़्गा, तालाबों से मछली पकड़ते लोग, छोटे–छोटे पत्थरों पर मिट्टी के बर्तनों में रखा हड़िया, पत्तों की सरसराहट, लाल मिट्टी की गंध, करमा, सरहुल पर्व–त्योहारों में परंपरागत कपड़ों में थिरकते युवा, मंगलवार को लगनेवाली मंगर हाट गांव की खूबसूरती के साथ ही आदिवासियत गंध को भी बयां करती है। जसिंता के काव्य–फलक को यही प्रकृति और आदिवासियत गंध सींचती है। आदिवासी समाज की पीड़ा, संघर्ष, प्रकृति–प्रेम और अस्तित्व की तलाश को अपनी कविताओं और गद्य में अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से पिरोती हैं जसिंता।

जसिंता केरकेट्टा न सिर्फ एक कवयित्री हैं अपितु एक पत्रकार और कार्यकर्ता भी हैं। उनकी कविताएं उनका भोगा हुआ यथार्थ है जिसमें उनकी अपनी समस्याएं, संघर्ष और पीड़ा है। यह अनुमान पर नहीं बल्कि अनुभव पर आधारित साहित्य है, जिसे उन्होंने जीया है। इन की कविताओं में आदिवासी किशोरियों की समस्याएँ, लिंग आधारित हिंसा, प्रकृति दोहन, आर्थिक विपन्नता, विकास के नाम पर आदिवासियों को उनके जल, जंगल, जमीन से बेदखल करने का षड्यंत्र आदि को बहुत ही सुंदर तरीके से अभिव्यक्त किया गया है। उनकी प्रमुख काव्य–कृतियाँ हैं– ''अंगोर'' (2016), ''जड़ों की जमीन'' (2018), ''ईश्वर और बाज़ार'' (2022), ''प्रेम में पेड़ होना'' (2024), ''जसिंता की डायरी'' एवं ''जिरहुल''।

वैसे तो जसिंता की कविताएं अपने में विविध रंगों को समाहित किए हुए है, परंतु उनमें प्रकृति से उनका जुड़ाव साथ ही उसके दोहन की गाथा सबसे मुखर रूप में व्यक्त हुई है। यहाँ प्रकृति–चित्रण सिर्फ सौंदर्य का परिचायक नहीं है, बल्कि उसके उजड़ेपन के प्रति चिंता ज्यादा उभरकर आई है साथ ही साहित्य में जो जीव या पेड़–पौधे सौंदर्य के रूप में त्याज्य समझे जाते थे उन्हें भी जसिंता की संवेदना स्पर्श करती है। कचनार के फूल, महुआ, कुसुम, आम के मंजर, कोईनार के फूल, गोंदली, मडुआ, झींगुर, जुगनू, रूगड़ा, खुखड़ी, पुटू परका कोहड़ा (सफेद कोहड़ा), सरई के फल, अरंडी के बीज, सफेद बागुड़ी के फूल इत्यादि कितनी ही चीजें उनके काव्य में अपनी गरिमामय उपस्थिति दर्ज कर रहे हैं।

आदिवासी प्रकृति के सिर्फ उपभोक्ता नहीं है बल्कि उसके संरक्षक भी हैं। वहां के पेड़–पौधे, नदियाँ, नाले–झरने, पशु–पक्षी और कीड़े–मकोड़े सभी उसके मित्र हैं। जंगल से जड़ी–बूटी इकट्ठी करना, बांस से टोकरी बनाना, गिरे हुए पत्तों से पत्तल बनाना उनके जीविका के स्रोत हैं। जसिंता केरकेट्टा श्परवाहश कविता में जंगल में ईंधन के लिए लकड़ी तलाशती आदिवासी स्त्री की संवेदना को व्यक्त करती हुई लिखती हैंः

"जंगल छानती
पहाड़ लांघती
दिनभर भटकती हूं

सिर्फ सूखी लकड़ियों के लिए।
कहीं काट न दूँ कोई जिंदा पेड़।"[1]

यह उस प्रकृति के प्रति प्रेम और ममता को दर्शाता है। विकास कार्यों के निमित्त वन क्षेत्र के विलोपन के प्रति आदिवासी कविताओं में विशेष चिंता देखने को मिलती है, इसी तरह पहाड़ों के अवैध खनन, उसकी कटाई पर भी जसिंता चिंता व्यक्त करती हुई लिखती हैं:

"थोड़े से पैसे के लिए
जो अपना ईमान बेचते हैं
वो क्या समझेंगे
पहाड़ों के लिए कुछ लोग
क्यों अपनी जान देते हैं।"[2]

जसिंता बहुत ही सजग, जागरूक और संवेदनशील कवयित्री है। वो प्रकृति की सजग प्रहरी हैं। पहले के घर आंगन सब मिट्टी के होते थे, आँगन में ही कई तरह की साग–सब्जियां, फूल–पौधें लगे होते थे। बारिश में मिट्टी की सोंधी खुशबू से मन खिल जाता था, पर अब वहाँ भी सीमेंट की मोटी चादर ने अपनी जगह जमा ली है। कंक्रीट के जंगल में मिट्टी दबकर अपनी साँसे खो दी है और पेड़–पौधे तो मर ही गए हैं, बारिश की बूंदें भी अब गायब हो जा रही हैं। इसी को व्यक्त करती हैं जसिंता की कविता शकिसी ने नहीं देखा मुझेश में वो लिखती है:

"किसी ने नहीं देखा मुझे
जब आंगन की मिट्टी को
सीमेंट का कवच पहनाया गया
मैं मिट्टी को समझाता रहा
मजबूत नींव के लिए
जरूरी है उसका मरना
मगर मैंने देखा
एक–एक कर
फूलों को भी मरते हुए।"[3]

सिर्फ आंगन की मिट्टी को दबाया नहीं गया, बल्कि गांव की कच्ची मिट्टी वाली सड़कों को भी कंक्रीट की परतों से सजाया गया। कहा गया कि यह विकास है, परन्तु यह विनाश की अगली कड़ी निकली। सड़कों के कारण बालू माफिया आसानी से नदी तक पहुंचने लगे साथ ही कोयला खनन करनेवाली कंपनियां भी पहाड़ों तक जाने लगी। सरकार और कंपनियां जंगल–पहाड़ से आदिवासियों को खनिजों के लिए विस्थापित करने में लगे हैं। यही उनका विकास है।

इस उत्तर पूंजीवादी दौर में प्रकृति का निर्मम दोहन हो रहा है, जिससे पर्यावरणीय संकट पैदा हो गया है, साथ ही जिनके जीवन का आधार ही यही हो, उनके अस्तित्व पर भी संकट नजर आता है। जल, जंगल और जमीन आदिवासी जीवन का आधार है, उनकी धरोहर है। उससे उन्हें विलग करने की राजनीति चल रही है, विकास के नाम पर जो विस्थापन मिल रहा है । जसिंता की उस पर पैनी दृष्टि है। वो लिखती हैं:

"कितने तो तुमने बाँध बनाए
कितने जंगल–पहाड़ उजाड़ें
पर बाँध का पानी–बिजली
हमारे घरों तक नहीं पहुंचता
हमें तुमने सौर ऊर्जा से चलनेवाली

बत्ती थमा दी
तुम भी शहर में सौर ऊर्जा से बत्ती
क्यों नहीं जलाते?
क्या तुम्हारी तरफ सूरज नहीं उगता?"[5]

इस कविता में उन्होंने बहुत ही सरल शब्दों में लेकिन कठोर भाव के साथ कहा कि तुमने बाँध बनाने के लिए जंगल और पहाड़ उजाड़ें पर बाँध का पानी और बिजली हमारे घरों तक नहीं पहुंचता है। हमारे संसाधनों को छीन कर तुमने अपना विकास किया और कहा कि यह हमारी सहूलियतों को ध्यान में रखकर किया जा रहा है। तुमने सौर ऊर्जा से चलने वाली बत्ती हमें थमा दी तुम क्यों नहीं जलाते क्या तुम्हारे यहां सूरज नहीं उगता? आदिवासी प्रकृति के पोषक और उपभोक्ता दोनों ही हैं। जंगल उनका आश्रय स्थल है वे काटे जा रहे हैं जीवनदायिनी नदी की धारा बाँध के नाम पर मोड़ दी जा रही है। आदिवासी ठगे से अपना पतन देख रहे हैं।

21वीं सदी का औद्योगिकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण ने आदिवासियों की संस्कृति, परंपरा और पहचान को काफी हद तक विनाश की ओर धकेला है। नदी हमारे प्राकृतिक जल स्रोत हैं। मानव अपनी उपभोक्तावादी दृष्टि के नाते बाँधों का निर्माण करते हैं जिससे नदी का नैसर्गिक प्रवाह रोक दिया जाता है और नदियों के प्रवाह मिटते जाते हैं। कृत्रिम बाँध बनाना, धाराओं को जबरदस्ती मोड़ना, नदियों से मशीनों द्वारा बालू निकालना, नदियों के किनारे अवैध कार्य करना और विभिन्न प्रकार के कचरो को नदियों में यूं ही बहा देना जैसे असंवेदनशील कदम से नदियों का जीवन संकट में है। नदियों के महत्व को पहचानते हुए भी उसे नष्ट करने पर तुले प्रकृतिखोर मनुष्य को चेतावनी देती हुई जसिंता लिखती हैं:

"एक दिन जब सारी नदियां
मर जाएंगी ऑक्सीजन की कमी से
तब मरी हुई नदियों में तैरती मिलेंगी
सभ्यताओं की लाशे भी
नदियां ही जानती हैं
उनके मरने के बाद आती है
सभ्यताओं के मरने की बारी।"[5]

सभ्यताओं का विकास प्राचीन काल से ही नदी किनारे होता आया है, जब नदी ही मर जाएगी, तब क्या सभ्यताएं नहीं मरेंगी। जसिंता इसलिए सचेत करती है मानव की महत्वाकांक्षाओं और अतृप्त लालसाओं से३. । विकास के नाम पर चलाई जाने वाली योजनाएं आरंभ और समाप्त हो जाती हैं, लेकिन इसमें नदी की अस्मिता उसके अस्तित्व को काफी चोट पहुंचती है।

आदिवासियों से कैसे एक–एक कर चीजें छीनी जा रही है जसिंता की उन पर पैनी नजर है। नदी, पहाड़ और जंगल के बाद कैसे उनके छोटे–छोटे उद्योग–धंधे छीने गए। उसको केंद्र में रखकर उन्होंने ''बाजार, अनाज और आदमी'' कविता लिखी:

"नहीं आता अब हमें
अपने बच्चे की कमीज में बटन टांकना
चटाई बढ़नी मचिया खटिया बनाना
पेड़ लगाना अनाज उगाना
चिड़ियों के लिए खेत में धान छोड़ आना
जिंदगी जोत दी गई है सिक्के उगाने में
और इस बेबसी पर हंसते हुए

कोई बड़ा बाजार लगा है
हर मोड़ पर नया मॉल बनाने में।"[6]

बाजार और आधुनिकीकरण ने लोगों से कैसे उनके हुनर और परंपरागत कामों को छीन लिया है? अब हर जगह छोटे–बड़े सभी गांव और शहर में मॉल कल्चर का मकड़–जाल फैल रहा है जो अपनी जमीन के मालिक हुआ करते थे वे लोग अब मजदूरी करने और दूसरों की गुलामी करने के लिए मजबूर हैं।

प्रकृति सिर्फ पेड़–पौधे, नदी, तालाब और पहाड़ ही नहीं होते जीव–जंतु भी इसके अंतर्गत आते हैं। जसिंता की सूक्ष्म दृष्टि उनके लिए भी आत्मीयता और ममत्व रखती है ''मेरा अपराध क्या है'' कविता में घुग्घू के प्रति व्यक्त करती हैं। ''मेरा अपराध क्या है'' कविता में जसिंता सालेन की निर्मम हत्या के साथ हत्यारे के जूतों तले आये उस ''घोंघे'' जिसको सालेन के बच्चे ''घोघ्घू'' कहकर बुलाते थे को याद करना नहीं भूलती। बिना अपराध के घोंघे का मारा जाना भी जसिंता के लिए उतना ही मायने रखता है जितना निरपराधश सालेन की हत्याः

"चलता था वह आंगन के आर–पार,
एक ही पल में आ गया था
बेवजह उधर आए बूटों के नीचे
निकल गई थी अंतड़ियां,
मर गया वह आंगन में
यह पूछे बिना कि
उनका अपराध क्या था।
उस दिन
बच्चों ने पिता के साथ
खो दिया घोघ्घू को भी
उनकी आँखें ताउम्र पूछती रहीं
उनका अपराध क्या था"[7]

बच्चों के भीतर घोघ्घू के प्रति पसरी आत्मीयता और दुःख को पिता के जाने के दुःख के समानांतर चित्रित करती है।

निष्कर्ष

जसिंता केरकेट्टा का साहित्य एक जीवंत दस्तावेज है। जो आदिवासी समाज की समस्याओं, उनके विस्थापन और शोषण को अभिव्यक्त करता है। विकास के नाम पर जो छल उनके साथ किया जा रहा है, उन वर्चस्ववादी मानसिकता तथा सफेदपोशो की वह पोल खोलती हैं। जसिंता जो जीती आई है, उसे वैसे ही अपनी कविताओं में लेकर आती है। कोई ताम–झाम या मुद्राएं वह नहीं अपनाती। उनकी रचनाओं में करुणा है, संघर्ष है, प्रतिरोध है और गहरी मानवीय संवेदना भी। उनकी रचनाएं साहित्य में एक नई दृष्टि लेकर आयी हैं। वे उस आवाज की प्रतिनिधि है, जिसे सदियों तक दबाया गया। उनकी कविताएं केवल पढ़ने के लिए नहीं महसूस करने और समाज को बदलने की प्रेरणा देती है। उनके शब्दों में जंगलों की खुशबू, जमीन का ताप और इतिहास की आह है जो आनेवाले समय में आदिवासी साहित्य की अमिट धरोहर बनेंगी।

संदर्भ सूची

1. https://www-hindwi.org/kavita/parwah-jacinta-kerketta-kavita, Accessed on 20/06/2025.
2. केरकेट्टा, जसिंता (2023) *ईश्वर और बाज़ार,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 181।

3. केरकेट्टा, जसिंता (2024) *जड़ों की जमीन,* अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा, दिल्ली, पृ. 12–15।
4. केरकेट्टा, जसिंता (2023) *जसिंता की डायरी,* जुगनू प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 06।
5. केरकेट्टा, जसिंता (2023) *ईश्वर और बाज़ार,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 36।
6. वही, पृ. 88।
7. केरकेट्टा, जसिंता (2024) *जड़ों की ज़मीन,* अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा, दिल्ली, पृ. 30।

****